

## इकाई 4 भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास - I

### इकाई की रूपरेखा

- 4.0 उद्देश्य
- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन की सामाजिक पृष्ठभूमि
  - 4.2.1 अंग्रेजी राज से पूर्व सामाजिक विचारधारा
  - 4.2.2 अंग्रेजी राज का प्रभाव
  - 4.2.3 मध्यमवर्ग का उदय
- 4.3 सुधार हेतु सामाजिक-धार्मिक एवं अन्य आंदोलन
  - 4.3.1 सुधारवादी आंदोलन
  - 4.3.2 पुनर्जागरण आंदोलन
  - 4.3.3 अन्य आंदोलन
- 4.4 भारत में स्वाधीनता और स्वाधीनता उत्तर राजनैतिक आंदोलन
  - 4.4.1 स्वाधीनता आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि
  - 4.4.2 धार्मिक और राजनैतिक आंदोलनों का संपूरक स्वरूप
  - 4.4.3 महिलाओं, कृषकों, अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों व जनजातियों से जुड़े राजनीतिक आंदोलन
- 4.5 भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन की वैचारिक पृष्ठभूमि
  - 4.5.1 परंपरा और आधुनिकता के बीच द्विविधा
  - 4.5.2 विनय कुमार सरकार
  - 4.5.3 आनंद कुमारस्वामी
  - 4.5.4 कुछ अन्य बुद्धिवादी
  - 4.5.5 भारत में आधुनिक शिक्षा की रूपरेखा
- 4.6 भारत में समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र का उदय
  - 4.6.1 समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र के बीच संबंध
  - 4.6.2 समाजशास्त्र और भारतशास्त्र (Indology) के बीच संबंध
  - 4.6.3 इडावती कर्वे
- 4.7 सारांश
- 4.8 शब्दावली
- 4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

### 4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप के द्वारा संभव होगा

- भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन की सामाजिक पृष्ठभूमि का वर्णन करना
- सुधार के लिये सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों का विवेचन करना
- भारत में स्वाधीनता पाने के लिये हुए राजनैतिक आंदोलन की व्याख्या करना

- समाजशास्त्रीय विचारधारा की वैचारिक पृष्ठभूमि का विवेचन करना
- भारत में समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र के उदय की रूपरेखा बनाना।

## 4.1 प्रस्तावना

अब तक आपने इस खंड की इकाई 1 में यूरोप में समाजशास्त्र का उदय, इकाई 2 में समाजशास्त्र के प्रवर्तक ऑगस्ट कॉम्ट और हर्बर्ट स्पेंसर के विषय में तथा इकाई 3 में जॉर्ज ज़िमेल, विल्फ्रेडो परेटो, और थोस्टीन वेब्लेन के विषय में पढ़ा है।

इस इकाई में हमने भारत में समाजशास्त्र के इतिहास और विकास की सामाजिक तथा वैचारिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया है। भारतीय जनसमूह के मनन-चिंतन, रहन-सहन और तौर-तरीकों पर अंग्रेजों के प्रभाव का भी वर्णन किया है। सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों ने समाज में फैली हुई कुरीतियों और कट्टरपंथी मूल्यों को दूर करने का प्रयास किया। स्वाधीनता आंदोलन और आंदोलन के नेताओं का भी समाज और संस्कृति पर काफी प्रभाव पड़ा। भारत में समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र का विकास इन्हीं सामाजिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में हुआ था।

भाग 4.2 में भारत में समाजशास्त्र चिंतन की सामाजिक पृष्ठभूमि का विवेचन है, भाग 4.3 में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन की चर्चा की गई है जबकि भाग 4.4 में स्वाधीनता आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि और साथ ही धार्मिक और राजनैतिक आंदोलनों की संपूरक प्रवृत्ति की भी चर्चा है। भाग 4.5 में भारत के समाजशास्त्रीय चिंतन की वैचारिक पृष्ठभूमि का विवेचन है और अंततः भाग 4.6 में भारतीय समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र के उदय की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इस से आगे इसी खंड की इकाई 5 में आपको भारतीय समाजशास्त्र के तीन मुख्य पथ प्रदर्शक राधाकमल मुकर्जी, डी. पी. मुकर्जी और जी.एस. घुर्ये के विषय में जानकारी प्राप्त होगी।

## 4.2 भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन की सामाजिक पृष्ठभूमि

भारतवर्ष का इतिहास चार सहस्राब्दियों से भी लंबा है। भारत की सांस्कृतिक विरासत में संस्कृत, प्राकृत और पाली जैसी भाषाओं में लिखे गए धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ भरे हुए हैं, इसके अलावा मध्ययुग में, अवधी, बृज, मैथिली, बंगला, असमी, मराठी, कन्नड, तेलुगु, मलयालम आदि क्षेत्रीय भाषाओं में भक्ति साहित्य का भंडार भरा पड़ा है।

### 4.2.1 अंग्रेजी राज से पूर्व सामाजिक विचारधारा

साहित्यिक परंपराओं की दृष्टि से भारत की सभ्यता अपेक्षाकृत संश्लिष्ट या मिश्रित किस्म की रही है। भारतीय दर्शन में योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक वेदांत और मीमांसा नामक छह प्रकार की विभिन्न विचारधाराएं हैं। भारतीय चिंतनधारा का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत है। तेरह प्रमुख उपनिषदों में मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन और उसके चरम लक्ष्य से संबंधित दार्शनिक अन्वेषण हैं। इनके अलावा भारत में बौद्ध और जैन धर्मों की दार्शनिक कृतियां भी हैं। सामान्यतः ये सभी विचारधाराएं मानवमात्र के क्रमिक विकास से सम्बद्ध हैं। इन में से अधिकांश मोक्ष, अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्त के लक्ष्य से जुड़ी हैं। भारतीय समाज नवीन परिस्थितियों के अनुरूप बदलता रहा है। आधुनिक काल से पूर्व भारत की सामाजिक विचारधारा एक बहुविध नृजातीय समाज की अभिव्यक्ति थी। इस्लामी परंपरा के प्रभाव से सूफ़ी संप्रदाय का उदय हुआ जिसने विशेषरूप से उत्तर भारत में लोगों के रहन-सहन और मूल्यों को व्यापक रूप से प्रभावित किया। हिंदू और मुस्लिम विचारधारा के समन्वय का एक अच्छा उदाहरण सिख धर्म है। भारत में

अलग-अलग विचारों को पनपने की स्वतंत्रता रही है। मतों व विश्वासों के आधार पर किसी विशेष वर्ग पर अत्याचार नहीं किया गया था। इसीलिए भारत के सामाजिक वर्गों के बीच एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता की भावना बनी रही। भारत में धर्म तो जनसाधारण के बीच फला-फूला किंतु दर्शन की औपचारिक विचारधाराएं मुख्यतः पढ़े-लिखे शहरी लोगों के बीच ही पनपीं।

#### 4.2.2 अंग्रेजी राज का प्रभाव

भारत में अंग्रेजों का आगमन एक ऐसी घटना थी जिसका भारतीय समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। नई सामाजिक और आर्थिक शक्तियों ने पुरानी परंपराओं को तोड़ा। संस्कृत और फ़ारसी जैसी प्रतिष्ठित भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी राजभाषा हो गई। भारत के ग्रामीण हस्तकला उद्योग की वस्तुएं मैनचेस्टर, लंकाशायर, शेफील्ड और लंदन से आयी मशीनों के बने कपड़ों और अन्य वस्तुओं के सामने बाज़ार में नहीं टिक पाई। इसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे ग्रामीण हस्तकला उद्योग नष्ट हो गए। उपनिवेशी शासन में भारतीय गांव एक स्वावलंबी इकाई नहीं थे।

अंग्रेजों ने भारत में रेल, डाक व तार द्वारा संपर्क व्यवस्था को आसान बनाकर भारतीय समाज में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन के मार्ग खोल दिये। इसके अलावा उप महाद्वीप के अनेक भागों में प्रशासनिक और न्यायिक सेवाओं की व्यवस्था भी की गई। इस विकास के द्वारा भारत ने आधुनिक युग में प्रवेश किया। अंग्रेज शासकों ने भारत में स्कूल कॉलेज और विश्वविद्यालयों की स्थापना की। मिशनरी और भारतीय स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिये प्रयास किये।

#### 4.2.3 मध्यमवर्ग का उदय

पुराने सामंती वर्ग जैसे राजा, महाराजा, ज़मींदार, तालुकदार आदि अब उतने महत्वपूर्ण नहीं रह गए थे। वास्तव में जिस मध्यमवर्ग का उदय अंग्रेजी राज में हुआ उसने भारतीय समाज के लगभग हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। इस इकाई में जिन सामाजिक विचारकों की चर्चा की जाएगी वे सभी इसी मध्यमवर्ग के हैं। हालांकि धार्मिक अनुष्ठानों और पारिवारिक मामलों में जाति का महत्वपूर्ण स्थान है, लेकिन व्यवसाय, रोजगार और जनजीवन के क्षेत्रों में वर्ग महत्वपूर्ण हो गये हैं। यहां पर हमने मध्यमवर्ग शब्द का प्रयोग सिर्फ आर्थिक रूप में नहीं किया है। मध्यमवर्ग के उदय में आर्थिक तथा सांस्कृतिक तत्वों का योगदान था। मध्यमवर्ग के लोगों का न केवल आर्थिक जीवन बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन भी समान होता है।

### 4.3 सुधार हेतु सामाजिक-धार्मिक एवं अन्य आंदोलन

उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभ में मध्यमवर्ग ने भारतीय समाज में सुधार और आधुनिकीकरण की ओर प्रयास शुरू किया। इन सुधारवादी प्रयासों में सामाजिक तथा धार्मिक सुधार दोनों थे। बीसवीं सदी का उत्तरार्ध आने तक अनेक अन्य आंदोलन भी प्रकट हुए।

#### 4.3.1 सुधारवादी आंदोलन

उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारकों में से एक प्रमुख सुधारक बंगाल के राजा राममोहन रॉय (1772-1833) थे जिन्होंने सुझाव था कि यदि भारत के लोग सती प्रथा, बालहत्या आदि जैसे अंधविश्वासों और बुराइयों को त्याग दें तो वे प्रगतिशील बन सकते हैं। उन्होंने एक नए प्रकार के धर्म का प्रचार किया जिसमें वेदों के साथ ईसाई धर्म की शिक्षाओं का भी समावेश था। उन्होंने ब्रह्मो समाज की स्थापना की जो कि एक आध्यात्मिक मंच था। इस समाज के सदस्य जाति तथा अंधविश्वास से कोई मतलब नहीं रखते थे। इस समाज में मूर्तिपूजा का विरोध किया गया था और एक ही ईश्वर को पूजा जाता था।

राजा राममोहन रॉय का प्रभाव मुख्यतः बंगाल के शहरी और सुशिक्षित वर्ग तक ही सीमित था। इसी शताब्दी में महाराष्ट्र के एक न्यायाधीश महादेव गोविंद रानाडे ने मुंबई में प्रार्थना समाज की स्थापना की जो मोटे तौर पर बंगाल के ब्रह्मो समाज पर आधारित था। इन दो आंदोलनों के प्रति सामाजिक प्रतिक्रियाएं काफी भिन्न थीं। ब्रह्मो समाज द्वारा पाश्चात्य उदारवादी दृष्टिकोण पर जोर दिए जाने के कारण समाज के रूढ़िवादी हिंदुओं ने राजा राममोहन रॉय के सुधारों का विरोध किया। यहां रूढ़िवादी परंपराओं और आधुनिकता के बीच एक द्वंद्व खड़ा हो गया। इसके विपरीत प्रार्थना समाज द्वारा शुरू की गयी उदारवादी प्रवृत्तियों ने परंपरा और आधुनिकता के बीच तनाव नहीं आने दिया। ब्रह्मो समाज की तरह इसके सदस्यों ने स्पष्टतया गैर परंपरावादी रहन-सहन नहीं अपनाया। इसलिए समाज द्वारा इनका उतना कड़ा प्रतिरोध नहीं हुआ।

### 4.3.2 पुनर्जागरण आंदोलन

हमारी चर्चा में पुनर्जागरण आंदोलनों का उल्लेख काफी महत्व है। दयानंद सरस्वती (1824-1883) ने आर्य समाज की स्थापना की। इसके द्वारा उन्होंने लोगों से आग्रह किया कि वे हिंदु धर्म की हानिकारक परंपराओं (जैसे जातिवाद की संकीर्णता अंधविश्वासों और अनुष्ठानों आदि) को त्याग कर फिर से वेदों की पुरातन शुद्धता को अपनाएं। आर्य समाज ने ऐसी शिक्षा का समर्थन किया जिसमें परंपरा और आधुनिकता दोनों का समावेश था। दयानंद एंग्लो-वैदिक कॉलेजों (डी. ए. वी.) ने उत्तर भारत में बड़े पैमाने पर शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया। विवेकानंद द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन के दो प्रमुख उद्देश्य थे - पहला यह कि शिक्षित भारतवासियों को समाज के कमजोर वर्गों के प्रति जिम्मेदारी का अहसास दिलाएं, इसके साथ ही वे गरीबी और सामाजिक पिछड़ेपन को हटाने का प्रयास करें। दूसरे यह कि वे पश्चिमी देशों में भारतीय वेदों का प्रचार-प्रसार करें। पहले उद्देश्य की पूर्ति के लिए शहरी, ग्रामीण और जनजातीय इलाकों में कई स्कूल और छात्रावास स्थापित किए गए, जिससे सामान्य लोगों के लिए शिक्षा और रोजगार की संभावनाएं बढ़ी। दूसरे उद्देश्य के लिए बहुत से पश्चिमी देशों में आध्यात्मिक जागरण के उद्देश्य से कई अद्वैत केंद्रों की स्थापना की गई।

### 4.3.3 अन्य आंदोलन

जिस प्रकार सुधारवादी तथा पुनर्जागरण आंदोलनों ने भारत में सामाजिक सुधार की लहर पैदा की और भारतीय समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक जागरूकता से जुड़ी बौद्धिक गतिविधियों को बढ़ावा मिला, उसी तरह स्वतंत्रता के बाद के काल में पर्यावरण ह्रास और गलत ढंग के विकास के विरोध में उपजे आंदोलनों ने भी बौद्धिक कार्यकलापों को प्रभावित किया। फलस्वरूप अनेक समाजशास्त्रियों ने ऐसी समस्याओं पर अपना ध्यान केंद्रित किया जो विकास प्रक्रिया (जैन 1995b, 2001a, 2001b, 2001c तथा 2003), निर्वनीकरण (जैन 1984a, 1984b, 1994, 1995a तथा 1998-99), विस्थापन (फर्नांडेस 2000) और भारत में महिला-पुरुष की जनसंख्या के अनुपात में विषमता (पटेल 1994) जैसे विषयों से जुड़े हैं। ये सारे मुद्दे देश के विभिन्न भागों में उपजे अनेक आंदोलनों के माध्यम से सामने आए तथा विद्वानों ने तब इन पर अध्ययन किये। इस इकाई में हमने इन प्रवृत्तियों का नाम भर ही लिया है। इनके विस्तार में न जाते हुए आपको बता दें कि समाजशास्त्र में आए विकास के इन चरणों से जुड़े विषयों को समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर डिग्री के पाठ्यक्रमों में शामिल करने के पूरे प्रयास होंगे।

### बोध प्रश्न 1

i) भारतीय दर्शन की छः विचारधाराओं के नाम लिखिए। तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....  
.....



### सोचिए और करिए 1

रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रेमचंद, मुल्कराज आनंद, राजाराव, वेंकटरमणी या किसी अन्य प्रसिद्ध लेखक का एक उपन्यास पढ़िए। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि भारत का स्वाधीनता संग्राम होना चाहिए।

उपन्यास पढ़ने के बाद दो पृष्ठों का लेख लिखिए जिसमें निम्नलिखित के बारे में विवेचन हो।

1. उपन्यास में पायी जाने वाली सामाजिक संस्थाएं जैसे परिवार, कानून, राजनैतिक संगठन आदि।
2. उपन्यास के विभिन्न पात्रों की गतिविधियों द्वारा अभिव्यक्त समाज के मूल्यों और मान्यताओं आदि।

यदि संभव हो तो अपने लेख की तुलना अपने अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों के लेखों के साथ कीजिये।

### 4.4.2 धार्मिक और राजनैतिक आंदोलनों का संपूरक स्वरूप

राष्ट्रीय कांग्रेस और अन्य राजनैतिक पार्टियाँ सीधे राजनैतिक गतिविधियों में लगी थीं जबकि शिक्षा और सुधार द्वारा धार्मिक आंदोलन अप्रत्यक्ष रूप से इसमें अपना योगदान दे रहे थे। पहले आंदोलन ने राजनैतिक जागृति पैदा की जब कि दूसरे ने आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न की। इस प्रकार दोनों आंदोलनों को एक दूसरे के संपूरक के रूप में देखा जाना चाहिए। अब तक हमने उस सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया है, जिसमें भारतीय समाजशास्त्र का विकास हुआ। इससे पहले कि हम समाजशास्त्र और उसके मुख्य प्रवर्तकों के विषय में विचार करें, पहले हम उस वैचारिक वातावरण का विवेचन करें जिसमें भारतीय समाजशास्त्र का उदय हुआ।

### 4.4.3 महिलाओं, कृषकों, अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों से जुड़े राजनीतिक आंदोलन

सामाजिक संस्थाओं और राजनीतिक प्रक्रियाओं के बीच की अंतःक्रिया से बहुधा ऐसे सामूहिक कार्य को बढ़ावा मिलता है जो संगठित रूप से संचालित होते हैं। हमने पाया है कि भारत में सामाजिक परिवर्तन लाने की इच्छा से शुरू किए गए अभियानों ने धीरे-धीरे स्पष्ट उद्देश्यों के साथ कार्य-योजना व संगठन वाले राजनीतिक आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया है। आपने देखा होगा कि मौजूदा राजनीतिक ढांचे से असंतुष्ट जनता की बढ़ती अपेक्षाओं के संदर्भ में भारत में कई आंदोलन उठ खड़े हुए हैं (ऐसे आंदोलनों पर हुए अध्ययनों के लिए देखें कोठारी 1960, बेली 1962 और देसाई 1965)। इस प्रकार के आंदोलनों का मुखर्जी (1977), ऊमन (1977) और राव (1978) जैसे समाजशास्त्रियों ने सैद्धांतिक तथा विवरणात्मक दृष्टि से अध्ययन किया है।

राजनीतिक आंदोलनों के उदाहरणस्वरूप, 1946 से 1951 के बीच हुए तेलंगाना कृषक संघर्ष को आप देखें। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने इस संघर्ष का नेतृत्व किया था (देखें धनागरे 2002)। इसी प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी के विभिन्न दलों ने 1960 के दशक में उपजे नक्सबाड़ी आंदोलन को आज तक अपना समर्थन जारी रखा है (देखें बनर्जी 2002 और 2002)। दोनों तेलंगाना तथा नक्सलबाड़ी आंदोलनों का मुख्य ध्येय रहा कि कृषि से जुड़े मौजूदा सामाजिक-संबंधों में बदलाव हो।

भारतीय समाज के सर्वउपेक्षित एवं प्रताड़ित वर्ग अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के तरह-तरह के संघर्षों, विरोध-अभियानों एवं आंदोलनों की कहानी लंबी है। ओमवेट (2001) ने अम्बेदकर के बाद दलित आंदोलन का विशद अध्ययन किया है। दूसरी ओर सिन्हा (2002) और सिंह (2002) ने जनजातीय आंदोलनों पर काम किया है।

भारत में महिला आंदोलन और राजनीति के बीच अंतःक्रिया कम नहीं है। इस प्रकार के अध्ययनों के लिये देखें लिंगम (2002), जैन (1984 और 1986) और देसाई (1988)। भविष्य में होने वाले क्षेत्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर राजनीति में उनकी भूमिका के संदर्भ में छात्र आंदोलनों में भाग लेने वाले युवाओं के महत्व को समझा जा सकता है। इस दृष्टि से शाह (2002) तथा गुहा (2002) के अध्ययनों का महत्व बढ़ जाता है। इन तमाम अध्ययनों की चर्चा करने का आशय इनकी ओर केवल आपका ध्यान आकर्षित करना मात्र है। राजनीतिक आंदोलनों को समाजशास्त्र पर स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रमों में विशद अध्ययन का विषय बनाया जायेगा।

## 4.5 भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन की वैचारिक पृष्ठभूमि

भारत में विशिष्ट (elite) वर्ग पर अंग्रेजों के प्रभाव की चर्चा करना यहां उचित है। भारत में सदियों पुरानी एक प्रतिष्ठित साहित्यिक परंपरा थी। संस्कृत का ज्ञान विशिष्ट वर्ग की पहचान थी। किंतु भक्ति काल (लगभग उन्नीसवीं शताब्दी से) के दौरान क्षेत्रीय भाषाओं में उच्च स्तरीय साहित्य का विकास हुआ। क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्यिक रचना करने की प्रेरणा जिन भक्त कवियों ने दी, या तो वे स्वयं रचनाकार थे या फिर उनके उपदेशों ने साहित्यिक रचनाओं को प्रभावित किया। इस संदर्भ में तुलसीदास (अवधी), सूरदास (ब्रज), कबीर (हिंदी के मिश्रित रूप), शंकरदेव (असमी), चैतन्य महाप्रभु (बंगाली), नामदेव और तुकाराम (मराठी), नरसी मेहता (गुजराती), पुरंदरदास (कन्नड़), नायनार और आलवार (तमिल) आदि कई अन्य नाम गिनाए जा सकते हैं।

भारत के अधिकांश भागों में भक्तजन मुख्य रूप से जनसाधारण के लिए सम्माननीय थे जबकि विशिष्ट वर्ग अब भी संस्कृत से जुड़ा हुआ था और उसे आदर्श साहित्यिक रूप मानता रहा। संस्कृत की रचनाओं के साथ साहित्यिक प्रतिष्ठा जुड़ी हुई थी। यहां तक कि रवींद्रनाथ टैगोर को भी उस पारंपरिक बंगाली विशिष्ट वर्ग का सामना करना पड़ा था जिनकी मान्यता थी की संस्कृत भाषा बांग्ला भाषा से श्रेष्ठ है। लेकिन जब भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बन गई तो ये सारी धारणाएं बदल गईं। भारतीय विशिष्ट वर्ग ने तेजी से किंतु आंशिक रूप में अंग्रेजी को अपना लिया। एडवर्ड शिल्स (1961) के अनुसार भारतीय विशिष्ट वर्ग द्वारा अंग्रेजी को अपना लेने के बावजूद भी संस्कृत पर आधारित ब्राह्मणवादी परंपरा के प्रति उनका मोह बना रहा। दूसरे शब्दों में अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण किए हुए आधुनिक विशिष्ट वर्ग की विज्ञान और तकनीकी की अपेक्षा साहित्यिक और मानववादी परंपराओं में अधिक रुचि थी। विशिष्ट वर्ग पर यह दृढ़ता संस्कृत की पकड़ के कारण ही थी।

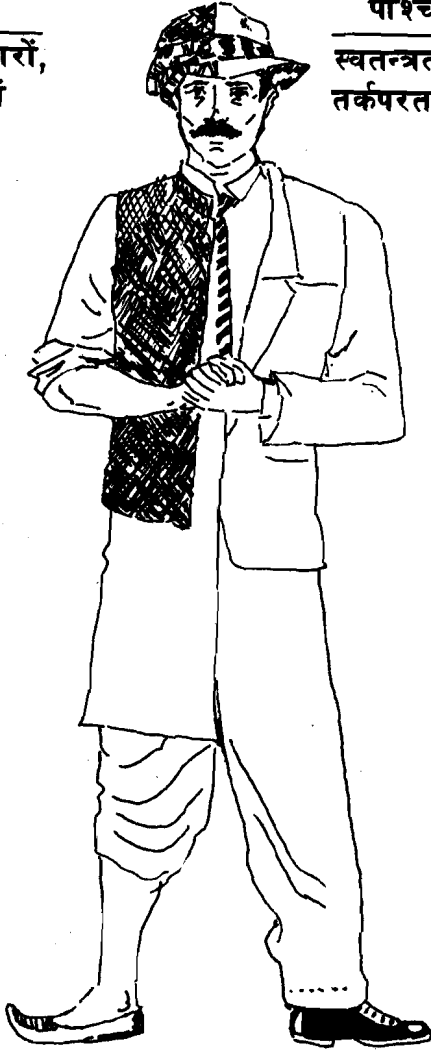
### 4.5.1 परंपरा और आधुनिकता के बीच द्विविधा

कुल मिलाकर, भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग में परंपरा और आधुनिकता के बीच द्विविधा (dilemma) की स्थिति आ गयी थी (देखिये चित्र 4.1: भारतीय बुद्धिजीवी)। परंपरा का अर्थ है पुराने रीति-रिवाजों, नैतिक मूल्यों तथा आदर्शों आदि का महत्व और आधुनिकता का संबंध तर्क संगति, स्वाधीनता और समानता जैसे पाश्चात्य आदर्शों के प्रभाव से है। परंपरा और आधुनिकता एकदम से विपरीतार्थ तो नहीं हैं किंतु कुछ विद्वानों (जैसे शिल्स 1961) ने इनका प्रयोग पुराने और नये मूल्यों के बीच अंतर दिखलाने के लिये किया गया है। अमेरिका में भारतीय कला के

संग्रहालयाध्यक्ष और सामाजिक विचारक आनंद कुमारस्वामी ने आधुनिकता और परंपरा के इन पारंपरिक अर्थों को अस्वीकृत किया है। परंपरा से उनका अर्थ भक्तिवादी प्रथाओं से बिल्कुल नहीं है। परंपरा से उनका मतलब उन आधारभूत मूल्यों से है जो पूर्व और पश्चिम दोनों के लिए सामान्य हैं। इन विचारों के बारे में आपको आगे विस्तार से जानकारी दी जाएगी। प्रतिष्ठित समाजशास्त्री बिनय कुमार सरकार का मत इसके बिल्कुल विपरीत था। उनके अनुसार भारत में परंपरा की जड़ धर्म और आध्यात्मिकता में है। उन्होंने भारत की धर्मनिरपेक्ष शक्ति को दर्शाने का प्रयास किया है। फिर भी सरकार ने पूर्ण रूप से परंपरा को अस्वीकार नहीं किया है। मानव प्रगति के लिए वे भारतीय संस्कृति के धर्मनिरपेक्ष पहलुओं का उपयोग करना चाहते थे।

**भारतीय पृष्ठभूमि**  
**भारतीय दार्शनिक विचारों,**  
**संस्कृति और कलाओं**  
**आदि का प्रभाव**

**पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव**  
**स्वतन्त्रता, व्यक्तिवाद, समानता,**  
**तर्कपरता आदि की अवधारणाओं**  
**का असर**



**भारतीय समाजशास्त्रीय चिन्तन**

चित्र 4.1: भारतीय बुद्धिजीवी

#### 4.5.2 बिनय कुमार सरकार

बिनय कुमार सरकार तर्कवादी (rationalist) थे। वे इस मत से सहमत नहीं थे कि पश्चिमी दुनिया भौतिकवादी है (materialistic) और पूर्व आध्यात्मवादी (spiritualistic) है। सरकार ने



यह तर्क दिया है कि भारतीय समाज में भौतिकवादी और धर्मनिरपेक्षता दोनों तत्व मौजूद थे। भारत के पिछले इतिहास को देखें तो यह पता चलता है कि भारतीय समाज की सकारात्मक भौतिकवादी दृष्टि से व्याख्या की जा सकती है। वे इस मत से सहमत नहीं थे भारत की संस्कृति रहस्यवादी (mystical) या पारलौकिक (otherworldly) है। भारत के सामंतवादी कृषि-प्रधान अतीत से पँजीवादी वर्तमान में परिवर्तन का सरकार ने समर्थन किया है। उपनिवेशिक शासन ने भारत के एकाकीपन को समाप्त कर उसे विश्व की मुख्य धारा से जोड़ा। पँजीवादी या बुर्जुआ संस्कृति इस युग की मुख्य शक्ति थी। भारत के तर्कसंगत आधार की खोज में बिनय कुमार सरकार के विचार मैक्स वेबर के विचारों से मेल खाते हैं। वेबर ने पँजीवाद का समाजशास्त्र विकसित किया, परंतु सरकार (1922) ने पँजीवाद के राजनैतिक पक्ष पर जोर दिया जबकि वेबर ने अपना ध्यान नौकरशाही (bureaucracy) पर केंद्रित किया था।

विश्व के विकसित समाजों के समकक्ष आने के लिये भारत को आत्म विश्वास और संतुलन की आवश्यकता थी। सरकार स्वयं तो नास्तिक थे किन्तु उन्होंने भारत की धार्मिक परंपरा को कभी नहीं नकारा। उनके अनुसार भारत के धर्मों का भी एक धर्म निरपेक्ष आधार था। उदाहरण के लिये शिव, पार्वती या गणेश जैसे देवी-देवता, वास्तव में मनुष्य की ही परिकल्पनाएं थीं। त्याग और रहस्यवाद पर बे-हिसाब जोर देने वाली भारतीय परंपरा भारत को बदलते हुए समय के साथ नहीं चलने देगी। अतः भारत के शिक्षित वर्गों के लिए यह आवश्यक था कि वे अपने तर्क संगत और धर्मनिरपेक्ष अतीत को पुनर्जीवित करके स्वयं को एक शहरी औद्योगिक समाज की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करें। इसलिये बिनय कुमार सरकार धार्मिक पुनर्जागरण के विरोधी थे।

पश्चिमी देशों का बुर्जुआ वर्ग अपने सामंती अतीत से छुटकारा पाने में सफल हो गया था। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप चर्च व उसके रहस्यवाद और त्याग का आधिपत्य समाज पर से जाता रहा। व्यक्ति अब समूह के दंत चक्र का अंग नहीं रहा। नये युग में उत्पादन की पद्धतियाँ ही नयी नहीं थी, बल्कि नई सामाजिक स्थितियों का भी उदय हुआ। यूरोप के औद्योगिक समाज में व्यक्तिवाद को प्रधानता मिली। व्यक्ति को कर्म और सफलता के लिये उद्यम और प्रेरणा की आवश्यकता थी। इसलिये पुरानी सामूहिक अस्मिताओं को छोड़कर नये व्यक्तिवादी उद्देश्यों और आकांक्षाओं ने फलना-फूलना शुरू किया।

यूरोप के मैकियावेली और हॉब्स जैसे राजनैतिक दार्शनिकों से बिनय कुमार सरकार प्रभावित थे। मैकियावेली (चौदहवीं शताब्दी) ने आधुनिक पँजीवाद के उदय के आरंभिक दिनों में अपना राजनैतिक दर्शन लिखा था। पँजीवादी व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक उद्यमी, आत्म विश्वासी और आर्थिक लाभ के प्रति अधिक आकृष्ट था। राजनैतिक शासकों के लिए उसके ये आदेश थे कि वे अवसर का पूरा लाभ उठाएं और लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अनवरत काम करें। सत्रहवीं शताब्दी के राजनैतिक दार्शनिक थॉमस हॉब्स ने सामाजिक अनुबंध (social contract) का सिद्धांत दिया। मैकियावेली द्वारा चित्रित आत्मावलंबी व्यक्ति अब अपेक्षाकृत विकसित पँजीवाद के लिए उपयुक्त नहीं था क्योंकि पँजीवाद में अधिक व्यवस्था और संतुलन की आवश्यकता थी। इसलिये मनुष्य को अपने स्वार्थी लक्ष्यों को त्याग कर एक सामाजिक अनुबंध में बंधकर समाज के नियमों के अनुसार रहना आवश्यक था। इस प्रकार वैयक्तिक उत्तेजना को नियंत्रण में रखा जा सकता था। सरकार का कहना था कि भारतीयों को अपनी रहस्यवादी प्रवृत्ति का त्याग करके पँजीवादी व्यवस्था के लिए एक नये सामाजिक परिप्रेक्ष्य का विकास करना चाहिए। बिनय कुमार सरकार की महत्वपूर्ण रचनाएं हैं--*पॉजिटिव बैकग्राउंड आफ हिंदू सोसायटी*, 4 खंड (1914 से 1937 के बीच प्रकाशित) और *पोलिटिकल इंस्टीट्यूशंस एंड थ्योरीज़, ऑफ हिंदूज़* (1922)। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र पढ़ाते थे।

### 4.5.3 आनन्द कुमारस्वामी

आनन्द कुमारस्वामी (जिनका जिक्र हमने पहले किया है) भारत के एक आरंभिक सामाजिक विचारक थे जिनका भारतीय समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। वे एक आदर्शवादी विचारक थे अर्थात् एक ऐसा व्यक्ति जिसे ईश्वर, अच्छाई के महत्व आदि जैसे जीवन के भाववाची मूल्यों में विश्वास हो। इस संबंध में वे बिनय कुमार सरकार के बिल्कुल विपरीत थे जो भारतीय समाज के भौतिक आधार को खोजना चाहते थे। इस शताब्दी के आरंभिक दो या तीन दशकों को पुनर्जागरण (renaissance) का काल कहा जा सकता है। विवेकानंद, श्री अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि जैसे गणमान्य व्यक्ति भी भारत की एक आदर्शवादी छवि प्रस्तुत करना चाहते थे। इन लोगों की मान्यता थी कि भारत की महानता उसकी आध्यात्मिकता में है। इस आध्यात्मिक आत्मा को पुनर्जीवित कर भारत न केवल अपनी दरिद्रता और पिछड़ेपन पर विजय प्राप्त कर सकता है बल्कि, भौतिक लोभ और युद्ध तथा हिंसा से उत्पीड़ित पश्चिमी जगत को राहत पहुंचा सकता है।

आनन्द कुमारस्वामी ने भारत में कला विशेषकर स्थापत्य कला और वास्तुकला के विकास पर व्यापक रूप से शोध किया। उनके लिए भारतीय कला अपने असंख्य रूपों में न केवल सजावट और सौन्दर्य की वस्तु थी बल्कि उस के द्वारा भारत की उस मानसिकता को समझा जा सकता है जिस में सृष्टि की एकात्मकता या विविधता में एकता का संदेश हो। यह महान सभ्यता और संस्कृति के लिए स्थायी प्रमाण-पत्र था।

भारतीय कला ने मानवजाति के आदर्शों और मूल्यों को साकार किया। हमारे देश में जहां पर अधिकांश लोग अशिक्षित हैं, कला ने शिक्षा के दृश्य (visual) माध्यम का काम किया। इसने जनसाधारण के लिए महाकाव्यों, पुराणों और दन्तकथाओं को शिलाओं, मिट्टी, और संगमरमर पर चित्रित किया। इतना ही नहीं कला ने भारत के धार्मिक मूल्यों को संजोए रखा और सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों में भारत की एकरूपता को प्रस्तुत किया। इस तरह देखा जाए तो कठोर तथा कोमल, भयानक तथा मोहक, तर्कसंगत तथा सार्थक आदि विभिन्न पहलू भारतीय कलात्मक अनुभव के अटूट हिस्से रहे हैं।

कुमारस्वामी ने भारतीय कला के दर्शन की व्याख्या करते हुए कई किताबें लिखीं। मुख्य रूप से पश्चिम के देशों में, पुराने समय में, भारत अपनी संस्कृति की रचनाओं द्वारा जाना जाता था। भारत की कला जो कि लगभग चार सहस्राब्दियों में विकसित हुई थी, उसके विषय में पश्चिम में एक बहुत ही धुंधली-सी अस्पष्ट धारणा बनी हुई थी। कुमारस्वामी का मानना था कि भारतीय मूर्तिकला केवल मानवरूपी ही नहीं थी अपितु यह भारतीय आदर्शों का वास्तविक खजाना भी थी।

शिवनटराज की मूर्ति मात्र मूर्तिकला की एक चरम उपलब्धि ही नहीं है, बल्कि वह मुक्ति (स्वच्छंदता) का प्रतीक भी है। शिव का नृत्य नश्वरता के बंधनों के साथ ही मनुष्य की आत्मा को सांसारिक बंधनों से भी मुक्त करता है। कुमारस्वामी का यह मानना था कि भारतीय और यूरोपीय गोथिक कला में बहुत साम्य है। यद्यपि डब्ल्यू. बी. हैवल, पर्सी ब्राउन आदि लोगों ने भारतीय कला की तरह-तरह से व्याख्या की थी लेकिन कुमारस्वामी ने पहली बार भारतीय कला का विस्तृत दर्शन प्रस्तुत किया।

कुमारस्वामी ने परंपरा और आधुनिकता के बीच अंतर स्पष्ट किया। परंपरा के युग में सामूहिक जीवन और गुणात्मक उपलब्धियों का महत्व था। यह विशेषता पूर्व, मध्यपूर्व और पश्चिम के सभी देशों में पाई जाती थी। विश्वव्यापी औद्योगिक क्रांति ने परंपरा के इस युग को बदल दिया। इस नए युग में प्रतिस्पर्धा ने मनुष्य को भौतिकवादी और स्वार्थी बना दिया। कुमारस्वामी ने विज्ञान और तकनीकी का विरोध तो नहीं किया लेकिन उन्हें इस बात का दुख था कि आधुनिक

युग में इनका दुरुपयोग हुआ। इस नई स्थिति ने मनुष्य को आक्रामक और स्वार्थी बना दिया और विभिन्न राष्ट्र युद्ध और हिंसा के द्वारा एक दूसरे को दबाने का प्रयास करने लगे।

पूर्व और पश्चिम की तुलना करते हुए उन्होंने भारत के आध्यात्म और मूल्यों को दूसरों से श्रेष्ठ दिखाने की कोशिश नहीं की। उन्होंने योरोपीय, चीनी और अरबी ग्रंथों में पाए जाने वाले रहस्यवाद की साम्यता पर विस्तार से लिखा। उनकी यह मान्यता थी कि पश्चिमी देशों की भौतिक उपलब्धियों ने पारंपरिक आध्यात्मिकता और रहस्यवाद को दबा दिया था। इसलिए पश्चिम में पुनः आध्यात्मिकता को नवजीवन प्रदान करने में भारत प्रेरक साबित हो सकता था। विशिष्ट रूप से भारत पूरे एशिया का प्रतिनिधित्व करता था। हालांकि चीनी सभ्यता भी महान थी। उसे बौद्ध धर्म ने महान स्वरूप प्रदान किया था। जापान, थाइलैंड, श्रीलंका, और कंबोदिया जैसे एशियाई देशों का मार्गदर्शन भारतीय संस्कृति ने ही किया था। अंततः महत्वपूर्ण मुद्दा उन मूल्यों को प्रोत्साहित करना था जो मानवजाति की विरासत थीं।

उन्होंने लिखा कि भविष्य के चुने हुए लोग किसी एक राष्ट्र या जाति के नहीं होंगे बल्कि वे पूरे विश्व के अभिजात वर्ग के होंगे। उनमें यूरोपीय क्रियात्मक ताकत और एशिया की वैचारिक स्वच्छता का मेल होगा। इसी संदर्भ में वे यह चाहते थे कि स्वाधीनता के लिये संघर्षरत भारतीय राष्ट्रवादी एक व्यापक दृष्टि अपनाएं। वे यह भी चाहते थे कि भारत के नवयुवक न केवल स्वतंत्र भारत की बल्कि एक बेहतर विश्व की भी कामना करें, जो तनाव और संघर्ष से मुक्त हो। विकास के नाम पर पश्चिमी देशों की नकल करने वाले इन उभरते हुए नये राष्ट्रों को कोई विशेष लाभ नहीं होगा। भारतीय महिला को भारतीय संस्कृति के आधार पर ही अपना स्थान फिर से परिभाषित करना चाहिए। यदि वे पुरुषों के साथ प्रतिस्पर्धा करती हुई आधारभूत मूल्यों को त्याग दें तो वे अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकेंगी।

कुल मिलाकर उन्होंने पश्चिम को पूर्व या प्राच्य (oriental) बना लेने की सलाह नहीं दी। वे दोनों का एकीकरण भी नहीं करना चाहते थे। वे यह चाहते थे कि उन प्राथमिक सिद्धांतों (first principles) या नैतिक मूल्यों को वे फिर से स्थापित करें जो मानवजीवन के आधार हैं। कुमारस्वामी की महत्वपूर्ण कृतियां हैं, *द डांस ऑफ शिव और क्रिस्चियन एण्ड ओरियंटल फिलॉसॉफी ऑफ आर्ट*, (1974)।

#### 4.5.4 कुछ अन्य बुद्धिवादी

जाने-माने समाजशास्त्री, जैसे लखनऊ विश्वविद्यालय के राधाकमल मुकर्जी और मुंबई विश्वविद्यालय के जी.एस. घुर्गे, स्पष्ट रूप से संस्कृत परंपरा से प्रभावित थे। उनकी दृष्टि में आधुनिकता वह साधन थी जो परंपरा को वर्तमान की ज़रूरतों के अनुरूप बदल सकती है। इनके विपरीत लखनऊ विश्वविद्यालय के ही जाने-माने समाजशास्त्री, डी.पी.मुकर्जी, आरंभ में मार्क्सवादी थे और कालांतर में उनके विचारों में अंतर आया। उनकी दृष्टि में परंपरा और आधुनिकता के बीच संघर्ष भी था और वे एक दूसरे के पूरक भी थे लेकिन वे मार्क्सवादी आदर्श-समाज (utopian state) की कल्पना से सहमत नहीं थे। कहने का तात्पर्य यह है कि वे आधुनिक भारत के निर्माण में परंपरा के महत्व को भी मानते थे। इन तीनों आरंभिक भारतीय समाजशास्त्रियों के योगदान के बारे में आपको आगे विस्तृत जानकारी दी जाएगी। लेकिन उससे पहले हमें अंग्रेजी राज में भारतीय शिक्षा प्रणाली के बारे में जानना होगा। इसका भारतीय समाजशास्त्र के स्वरूप और विकास पर गहरा असर पड़ा। यह प्रभाव मुख्य रूप से ब्रिटेन में विकसित हुए समाजशास्त्र का था। इसके अतिरिक्त भारत के समाजशास्त्र पर अमेरिका तथा यूरोप के समाजशास्त्र का भी प्रभाव पड़ा इसलिए उस समय में भारत की शिक्षा प्रणाली की रूपरेखा के बारे में जानना भी श्रेयस्कर है।

#### 4.5.5 भारत में आधुनिक शिक्षा की रूपरेखा

भारत में समाजशास्त्र की शिक्षा की रूपरेखा के बारे में संक्षेप में विवेचना करना उचित होगा। उन्नीसवीं शताब्दी में कलकत्ता, मुम्बई, और मद्रास की प्रेसिडेंसियों में विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। बड़ौदा, मैसूर, हैदराबाद आदि रियासतों (princely states) में आधुनिक शिक्षा संस्थाएं स्थापित की गईं। उच्च शिक्षा में अंग्रेजी और प्राथमिक शिक्षा में क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। इस शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसा शिक्षित वर्ग बनाना था जो अंग्रेजी हुकूमत को चलाने में सहायक सिद्ध हो। प्रशासन और न्यायतंत्र में केवल निम्न पदों पर ही सुशिक्षित भारतीयों की भर्ती होती थी।

कला और विज्ञान के क्षेत्रों में गिने-चुने विषय पढ़ाये जाते थे, जैसे अंग्रेजी, इतिहास, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, भौतिक-विज्ञान, रसायन-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान और प्राणि-विज्ञान। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के बाद ही एक मुख्य विषय के रूप में समाजशास्त्र पढ़ाया जाने लगा।

समाजशास्त्र का विकास इस कारण हुआ कि अंग्रेजी प्रशासकों को भारत के रीति-रिवाज, बोल-चाल के तरीके और सामाजिक संस्थाओं को समझना जरूरी था क्योंकि इससे प्रशासन चलाने में सुविधा होती। इसी कारण अंग्रेजी प्रशासकों ने आरंभ में ही भारतीय जनसमुदाय, प्रजातियों और विभिन्न संस्कृतियों के विषय में व्यापक अध्ययन किये। इसमें से हर्बर्ट रिज़ले, हटन, विल्सन, लायल, बेंस इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं।

समाजशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन 1914 में मुंबई विश्वविद्यालय में आरंभ हुआ। उस समय के भारतीय शासन ने समाजशास्त्र पढ़ाने के लिए अनुदान दिया। उसी वर्ष स्नातकोत्तर स्तर पर समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम पढ़ाए जाने लगे। 1919 में प्रतिष्ठित जीवविज्ञानी और नगर-नियोजन विशेषज्ञ पैट्रिक गेडिस के नेतृत्व में समाजशास्त्र और नागरिक शास्त्र का विभाग स्थापित किया गया।

1917 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के पोस्ट-ग्रेजुएट काँउंसिल ऑफ आर्ट्स एण्ड साइंसिज़ (Post-Graduate Council of Arts and Sciences) में सर ब्रजेन्द्रनाथ सील ने समाजशास्त्र का विभाग स्थापित किया। उस समय सील मैसूर विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त किए गए थे। इससे पहले वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक थे। भारत के विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र विषय को स्थापित करने में बी.एन. सील और मैसूर विश्वविद्यालय के ए.आर. वाडिया दोनों की सक्रिय भूमिका थी। कलकत्ता में राधाकमल मुकर्जी और बिनय कुमार सरकार समाजशास्त्र पढ़ाते थे। 1921 में राधाकमल मुकर्जी लखनऊ चले गए। लखनऊ भी कलकत्ता और मुंबई के बाद समाजशास्त्र के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण केंद्र बना। डी. पी. मुकर्जी (मार्क्सवादी समाजशास्त्री) और डी.एन. मजुमदार (नृशास्त्री) की सहायता से उन्होंने लखनऊ को समाजशास्त्र और नृशास्त्र के क्षेत्र में शोध और अध्ययन का प्रभावशाली केंद्र बनाया।

आइए अब पहले बोध प्रश्न 2 के उत्तर लिखें और फिर भाग 4.6 पढ़ें, जिसमें हमने भारत में समाजशास्त्र और नृशास्त्र के उदय के बारे में चर्चा की है।

#### बोध प्रश्न 2

- 1) निम्नलिखित वाक्यों में खाली स्थान भरिए।
  - अ) 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ..... ने की थी।
  - ब) राष्ट्रीय कांग्रेस विचार-विमर्श करने का ..... मंच माना जाता था।

- स) महात्मा गांधी के आगमन से कांग्रेस ..... की राजनैतिक पार्टी बन गई।
- द) धार्मिक-सामाजिक आंदोलनों ने भारतीय जनसमूह में ..... जगाया जबकि राजनैतिक आंदोलनों ने लोगों में ..... जागरूकता पैदा की।
- ii) बिनय कुमार सरकार के कुछ मुख्य विचारों की पाँच पंक्तियों में व्याख्या कीजिए।
- .....
- .....
- .....
- .....
- .....

## 4.6 भारत में समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र का उदय

समाजशास्त्र के उदय से पहले सामाजिक विचारकों, दार्शनिकों और प्रशासकों ने भारतीय समाज और उसके विभिन्न पहलुओं (जैसे न्याय, परिवार धर्म, जाति इत्यादि) को समझने का प्रयास किया।

भारत में समाजशास्त्र का विकास भारतशास्त्र (Indology) के विद्वानों के योगदान से जुड़ा हुआ है। इनमें से हेनरी मेन, एल्फ्रेड लायल इत्यादि के नाम लिए जा सकते हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारत को अपनी सामाजिक संस्थाओं की रक्षा करनी चाहिए। भारत के लोगों पर इन संस्थाओं को नष्ट करके परकीय (alien) जीवन पद्धति नहीं लादी जानी चाहिए। वे भारत की सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपराओं की महानता का आदर करते थे।

भारतविदों के अलावा अंग्रेजी प्रशासकों ने भी भारतीय जनसमुदायों, प्रजापतियों और संस्कृति का विस्तृत अध्ययन किया। इस जानकारी का उपयोग जनगणना रिपोर्ट, इम्पीरियल गेज़ेटियर, डिस्ट्रिक्ट गेज़ेटियर इत्यादि के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों और प्रबंधों में हुआ जो आज भी समाजशास्त्रियों और नृशास्त्रियों के लिए उपयोगी हैं।

समाजशास्त्र इंग्लैंड की तुलना में फ्रांस और जर्मनी में अधिक विकसित था। अमेरिकी विश्वविद्यालयों में इसका महत्व और अधिक था। भारतीय विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र के साथ-साथ नृशास्त्र का विकास होता रहा। भारत के संदर्भ में समाजशास्त्र और नृशास्त्र को अलग करना संभव नहीं है, हांलाकि उनकी पद्धतियां (methods) भिन्न हैं। सामान्यतया, समाजशास्त्र में शहरी औद्योगिक वर्गों पर और नृशास्त्र में जातियों, जनजातियों और समुदायों पर काम हुआ है। समाजशास्त्री नृशास्त्री भी हो सकते हैं और नृशास्त्री समाजशास्त्री हो सकते हैं। इन दोनों क्षेत्रों में काम करने वालों को नृजातीय समाजशास्त्री कहा जा सकता है। ये लिखित और साहित्यिक जानकारी के साथ-साथ मौखिक परंपराओं और अपने अनुसंधान या खोज द्वारा प्राप्त जानकारी का भी प्रयोग करते हैं। इसके कारण, जातियों, जनजातियों और क्षेत्रों के विषय में खोज आपस में संबद्ध है। समाजशास्त्र और नृशास्त्र एक दृष्टि से समान हैं, दोनों आनुभाविक आँकड़ों पर आधारित हैं। दोनों उन मानव समूहों से संबंधित हैं जो ग्रामीण या शहरी दोनों हो सकते हैं। अंग्रेजी राज में नृशास्त्र विज्ञान के क्षेत्र में जे. एच. हटन, एडवर्ड थर्स्टन, एच. रिज़ले, एल. एस. एस ओ' माली इत्यादि ने इस संबंध में कई पुस्तकें लिखीं। सर हेनरी मेन और डब्ल्यू. एच. बेडन पावेल ने भारतीय ग्रामीण समाज पर कई लेख लिखे। "डिस्ट्रिक्ट गेज़ेटियरों" में भारतीय समाज के आर्थिक और नृजातीय पहलू प्रस्तुत किए गए थे। भारतीय समाजशास्त्रियों के प्रबंध ग्रंथों (उदाहरण के रूप में घुर्ये के लेखों) में ऐसी जानकारी का काफी उपयोग हुआ है।

इन दो इकाइयों में (भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास I और II में) उन भारतीय लेखकों का उल्लेख किया जाएगा जो भारतीय समाजशास्त्र में अग्रणी थे। इस इकाई में यह देखा जा सकता है कि पाश्चात्य और भारतीय बौद्धिक विकास में काफी अंतर था। पाश्चात्य बुद्धिजीवियों का प्रयास यह था कि विचार को धर्मनिरपेक्ष बनाया जाए तथा ईसाई चर्च की निरंकुशता के विरुद्ध आवाज़ उठाई जाए। इसके विपरीत भारत में वैचारिक स्वतंत्रता पर धर्म की कोई रोक-टोक नहीं थी।

पाश्चात्य देशों से अंतःसंबंधों ने भारतीय समाज विज्ञान में रचनात्मक काम करने की प्रेरणा दी। आइए, अब हम संक्षेप में उपभाग 4.6.1 में समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र के बीच तथा उपभाग 4.6.2 में समाजशास्त्र तथा भारतशास्त्र (Indology) के बीच संबंध क्रमशः देखें।

#### 4.6.1 समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र के बीच संबंध

जैसा कि पिछली इकाई में बताया गया है कि भारत में समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र के बीच गहरा संबंध है। इन दोनों विषयों के उदय और विकास में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख योगदान था। राष्ट्रीय आंदोलन अंग्रेजी साम्राज्यवाद का परिणाम था। व्यवस्थित संचार व्यवस्था, यातायात और मुद्रण के कारण पश्चिमी देशों का असर और भी अधिक हुआ।

आधुनिक कानून व्यवस्था और पाश्चात्य शिक्षा के कारण भारतीयों में आत्म बोध की भावना पैदा हुई। एक तरफ़ लोग धर्म, जाति, जनजाति, क्षेत्र जैसे पहलुओं को महत्व देने लगे और दूसरी तरफ़ एकता की नयी भावना भी जागृत हुई। इन सामाजिक परिवर्तनों से नई समस्याएँ सामने आईं (श्रीनिवास एवं पाणिनी 1986: 18)।

समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र की जड़ें उस काल तक जाती हैं जब अंग्रेजी अधिकारियों ने यह अनुभव किया था कि शासन चलाने के लिये भारत की संस्कृति और सामाजिक जीवन की जानकारी पाना आवश्यक है। 1769 में हेनरी वेरेल्स्ट (बिहार और बंगाल के गवर्नर) ने अपने भूराजस्व अधिकारियों को निर्देश दिया कि वे जाने-माने परिवारों से उनके रीति-रिवाजों की जानकारी प्राप्त करें। सरकारी अधिकारियों के अलावा मिशनरियों ने भी उस समय के समाज के बारे में बहुमूल्य जानकारियाँ प्राप्त कीं। मैसूर में एक फ्रेंच मिशनरी एब्ब दुबो ने "हिन्दू मैनेर्स, कस्टमस एण्ड सेरेमनीज़ (Hindu Manners, Customs and Ceremonies) 1816 नामक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने उन लोगों के जीवन, रीति-रिवाजों और धार्मिक अनुष्ठानों के बारे में लिखा है जिनके साथ वे रहते थे। उन्होंने जातियों का और जातियों से आपसी संबंधों का भी अध्ययन किया।

1871 में पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर जनगणना की गई। 1901 में सर हर्बर्ट रिज़ले ने भारत का नृजातीय सर्वेक्षण किया जो जनगणना का एक हिस्सा था। जनगणना के आँकड़े शासकीय नीति के साधन बने। इनका उपयोग करके विभिन्न समूहों के बीच दीवारें खड़ी की गईं। उदाहरण के लिए शासकीय नीति के अनुसार अनुसूचित जातियों को अन्य हिंदू जातियों में नहीं गिना गया (श्रीनिवास एवं पाणिनी 1986: 20)।

आपने पहले ही पढ़ा है कि किस तरह समाजशास्त्र और सामाजिक नृशास्त्र के विषय भारतीय विश्वविद्यालयों में स्थापित हुए। यद्यपि इससे पहले भी अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानों ने इस क्षेत्र में योगदान दिया। इनमें ब्रजेन्द्रनाथ सील, पैट्रिक गेडिस, डब्ल्यू.एच.आर. रिर्वर्स, एल. के. अनंतकृष्ण ऐय्यर और एस.सी. रॉय के नाम लिए जा सकते हैं। बी. एन. सील कलकत्ता में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक थे। वे उन प्रारम्भिक विद्वानों में से एक थे जिन्होंने विश्वविद्यालयों का ध्यान समाजशास्त्र की तरफ़ आकर्षित किया। वे उन एकतरफ़ी विकासवादी सिद्धांतों का खंडन करते थे जिनके अनुसार समाज भी जीव विकास की तरह ही सहज आदिम अवस्था से

जटिल औद्योगिक अवस्था तक विकसित हुआ है (इस सिद्धांत का अच्छा उदाहरण हर्बर्ट स्पेंसर के विचारों में पाया जाता है। अधिक जानकारी के लिये इस खंड की इकाई 2 पढ़िए)।

विकासवादी सिद्धांत को मानने वालों का यह मत था कि अन्य समाजों की तरह भारतीय समाज भी विकास की निचली सीढ़ी में था। बीसवीं शताब्दी का यूरोपीय समाज इस सीढ़ी में सबसे ऊंचा था। यूरोपीय विद्वानों का यह मत उनके पक्षपात को साफ़ दिखलाता था कि उनका समाज सबसे श्रेष्ठ और विकसित है जबकि विश्व के अन्य समाज के लोग विकास की विभिन्न अवस्थाओं में ही हैं।

सर बी. एन. सील ने अपनी पुस्तक, *कम्पैरेटिव सोशियोलॉजी (Comparative Sociology)* में इस मत को अस्वीकार करते हुए भारतीय संस्कृति के पक्ष में बहुत कुछ लिखा और व्याख्यान भी दिये (देखें बैकर एण्ड बार्न्स 1961: 1142)। उन्होंने पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा उसके बाद मैसूर विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र को एक विषय के रूप में प्रारंभ किया।

मुंबई में समाजशास्त्र आरंभ करने का उत्तरदायित्व पैट्रिक गेडिस का था। 1919 में उनके नेतृत्व में समाजशास्त्र और नागरिकशास्त्र विभाग खोला गया। यह भारतीय समाजशास्त्र के विकास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। गेडिस जाने माने समाजशास्त्री, ल प्लाय से प्रभावित थे। वे संस्कृति और वातावरण संबंधी मानवीय भूगोल और नगर योजना, विशेषकर शहरी हास जैसी समस्याओं से जुड़े थे। उन्होंने कलकत्ता, इंदौर और दक्षिण के मंदिरों वाले शहरों (temple cities) की नगर योजना का अध्ययन किया था जो बहुमूल्य माना जाता है। अनेक भारतीय विद्वानों पर उनका प्रभाव था। जी. एस. घुर्ये एवं राधाकमल मुकर्जी के समाजशास्त्रीय लेखन में गेडिस का प्रभाव नज़र आता है (श्रीनिवास एवं पाणिनी 1986: 25)।

यद्यपि इन विद्वानों ने समाजशास्त्र को स्थापित किया लेकिन समाजशास्त्र की नींव को मजबूत बनाने में डी.एन. मजुमदार और एन.के. बोस का महत्वपूर्ण योगदान है। लखनऊ विश्वविद्यालय के डी.एन. मजुमदार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में नृशास्त्र का अध्ययन किया था। उन्होंने नृशास्त्र (anthropology) और सामाजिक नृशास्त्र (social anthropology) में विस्तृत कार्य किया। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों की प्रजातियों, जनजातियों और संस्कृतियों का अध्ययन किया। उनकी विशेष अभिरुचि सांस्कृतिक परिवर्तन की समस्याओं और जनजातियों की समस्याओं तथा उनके रूपांतरण में थी। ग्रामीण सर्वेक्षणों के लिए उन्होंने लखनऊ के पास एक गांव का सर्वेक्षण किया जो भारत के आरंभिक ग्रामीण सर्वेक्षणों में से एक है। उन्होंने कानपुर शहर का भी सर्वेक्षण किया।

एन. के. बोस भी कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्र थे, जिनका समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ता तो थे ही, साथ ही 1947 में महात्मा गांधी की नोआखली (अब बांग्लादेश में) यात्रा के दौरान उनके व्यक्तिगत सहायक भी थे। 1959 से 1964 तक भारत के नृशास्त्र सर्वेक्षण (Anthropological Survey of India) के निदेशक रहे और 1967 से 1970 तक भारत सरकार के अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कार्यालय के आयुक्त (Commissioner) भी रहे। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन में इनका विशेष योगदान रहा जिसमें उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाया। वे गाँधी के सिद्धांतों से प्रभावित थे और बाद में उन्होंने गाँधीवादी का आलोचनात्मक विश्लेषण भी किया। *हिंदू शोमाजेर गोढ़न*, जो बांग्ला भाषा में है, उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है (श्रीनिवास एवं पाणिनी 1986: 31)।

इस खंड में हमने भारत में समाजशास्त्र और नृशास्त्र के बीच संबंधों के उदय और विकास के विषय में बताया है। आइए, इसी संदर्भ में समाजशास्त्र और भारतशास्त्र (Indology) के बीच के संबंधों को देखें। वस्तुतः देखा जाए तो ये दोनों विषय एक दूसरे से अलग नहीं हैं, कई भारतशास्त्र

की कृतियां समाजशास्त्रीय या सामाजिक नृशास्त्रीय कृतियां जैसी ही हैं। पूर्ण रूप से स्पष्ट करने के लिए ही हमने इनका अलग-अलग उपभागों में विवेचन किया है।

भारत में समाजशास्त्र का इतिहास और विकास - I

### सोचिए और करिए 2

आप अपने पड़ोस के किन्हीं ऐसे दो व्यक्तियों को चुनिए जिन में से एक पंडित या मौलवी हो अर्थात् उसे अपने धर्म और धर्मग्रंथों का ज्ञान हो और दूसरा वह जिसने समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र या अर्थशास्त्र आदि जैसे विषयों में कम से कम स्नातक स्तर तक औपचारिक शिक्षा पाई हो।

इन दोनों व्यक्तियों से निम्नलिखित प्रश्न पूछिए।

- 1 भारतीय समाज भौतिकवादी है अथवा आध्यात्मवादी?
- 2 हमारे समाज के मार्गदर्शक नियम और मूल्य क्या हैं?

इन दोनों व्यक्तियों के विचारों पर एक पृष्ठ का एक नोट लिखिए जिसमें (i) इनके विचारों की समानता, (ii) असमानता का विवरण हो। यदि संभव हो तो अपने अध्ययन केन्द्र के अन्य विद्यार्थियों के नोट से इसकी तुलना कीजिए।

### 4.6.2 समाजशास्त्र और भारतशास्त्र के बीच संबंध

भारत में समाजशास्त्र के विकास का श्रेय सर विलियम जोन्स, हेनरी मेन, एल्फ्रेड लायल, मैक्स मूलर और अन्य कई प्राच्यविदों (Orientalists) को है। इन लोगों ने भारत की समृद्ध प्राचीन संस्कृति और दार्शनिक परंपरा का अध्ययन किया। इन्हीं कारणों से ये लोग भारतविद (Indologists) माने जाते हैं। भारतशास्त्र (जैसा कि नाम से स्पष्ट है) भारत और उसकी संस्कृति के अध्ययन को कहते हैं।

सर विलियम जोन्स ने 1787 में "एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल" की स्थापना की। यहां पर उन्होंने संस्कृत और भारतशास्त्र का अध्ययन आरंभ किया। इनकी इस सोसायटी का कार्य एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन करना था जो संस्कृत, तुलनात्मक विधिशास्त्र (न्याय शास्त्र), तुलनात्मक मिथकों आदि जैसी नृशास्त्र और भारतशास्त्र संबंधी विषयों में पाठको की रुचि पैदा कर सके। मैक्समूलर जैसे विद्वानों ने संस्कृत सीख कर पुराने महाकाव्यों और साहित्यिक कृतियों के अनुवाद में सहायता की जिसे भारतवासी करीब-करीब भूल चुके थे।

संस्कृत के ज्ञान ने भारत की महान सांस्कृतिक और दार्शनिक परंपरा को समझने में सहायता दी। जब अंग्रेजी शासक अधिकांश शिक्षित भारतीयों का उपहास कर रहे थे उस समय संस्कृत के इस ज्ञान ने भारतीयों के स्वाभिमान को फिर से जगाया।

भारतविदों ने प्राचीन कानून और समाज का सावधानी से अध्ययन किया। हेनरी मेन भारत आए और उन्होंने 1871 में विलेज कम्प्यूनिटीज़ इन द ईस्ट एंड द वेस्ट नाम की एक पुस्तक लिखी। इनके अलावा कार्ल मार्क्स और मैक्स वेबर आदि ने भी भारतीय सामग्री का उपयोग किया। वेबर ने धर्म के अध्ययन के लिए जनगणना रिपोर्टों में उपलब्ध नृजातीय सामग्री का उपयोग भी किया (श्रीनिवास एवं पाणिनी 1988: 22)।

हम पहले ही भारतीय दर्शन-कला और संस्कृति के विवरण को प्रस्तुत करने वाली भारतविदों की कृतियों के विषय में बता चुके हैं। कुमारस्वामी, बी. के. सरकार, राधाकमल मुकर्जी, जी. एस. घुर्ये, डी. पी. मुकर्जी आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिन्होंने अपनी कृतियों में इसे अभिव्यक्त किया है। पहले दो चिंतकों के विषय में हमने आपको इस इकाई में जानकारी दी है। राधाकमल मुकर्जी, डी. पी. मुकर्जी और जी. एस. घुर्ये के विषय में और उनके योगदान के विषय में जानकारी आपको अगली इकाई में दी जाएगी।



### 4.6.3 इड़ावती कर्वे

इड़ावती कर्वे एक प्रबुद्ध परिवार की बेटी थीं तथा वे महर्षि कड़वे के परिवार की वधू बनीं। उनके परिवार ने ब्राह्मण समाज में सुधार लाने के लिये विधवा विवाह का समर्थन किया।

इड़ावती कर्वे की प्रारंभिक रचना महाराष्ट्र के विभिन्न समूहों में मानवमितीय मापों (anthropometric measurements) पर थी। इस रचना में उन्होंने सामाजिक समूहों को भाषा के आधार पर विभाजित किया तथा इन सामाजिक समूहों के समान व्यवसाय (कुम्हार आदि) के आधार पर उनके उद्गम का पता लगाया। कर्वे ने पाया कि कुछ समूह बहिर्विवाही थे तथा इन्होंने "जाति" का रूप ले लिया था, दूसरी तरफ व्यवसाय के आधार पर बसी जातियां इकट्ठी होकर एक ग्रामीण समुदाय बन गई थीं।

अपनी मुख्य कृति, *किनशिप आर्गनाइजेशन इन इंडिया (1953)*, में उन्होंने भारत को चार मुख्य क्षेत्रों में बांटा और उनका तुलनात्मक अध्ययन किया। इस कृति की शुरुआत महाभारत के विभिन्न पात्रों की वंशावली से होती है साथ ही उन्होंने भारत के विभिन्न भागों से एकत्रित की गई जानकारियों का भी उपयोग किया। उन्होंने हिन्दू धर्म की नए प्रकार से व्याख्या की। उनके लेखन में भारतशास्त्र और सामाजिक सर्वेक्षण का समन्वय है।

महाभारत पर मराठी में लिखी गई रचना, *युगांतर*, के लिए उन्हें विशिष्ट रूप से पुरस्कृत किया गया। उनकी कुछ साहित्यिक कृतियों को मराठी स्कूलों की पुस्तकों में समाविष्ट किया गया। वैसे तो महाराष्ट्र के स्कूलों में उन्हें साहित्यकार के रूप में ही जाना जाता था, किन्तु बाद में समाजशास्त्रियों द्वारा उन्हें एक समाजशास्त्री के रूप में भी मान्यता मिली।

उन्होंने पुणे के दक्कन कालेज में समाजशास्त्र और नृशास्त्र की नींव डाली। वहां प्राक्-इतिहास (prehistory) के एच. डी. संकालिया, अर्थशास्त्र के डी. आर. गाडगिल आदि महान बुद्धिजीवी उनके समकालीन थे। इस विद्वतापूर्ण वातावरण में ही पुणे विश्वविद्यालय का विकास हुआ।

इड़ावती कर्वे एक आकर्षक वक्ता थीं। वे अपने विषय की उत्तम शिक्षिका थीं और साथ ही वे भारतीय समाजशास्त्र के क्षेत्र में पहली महत्वपूर्ण महिलाओं में से एक थीं। भारत में महिलावाद का अध्ययन करने वालों में उनका नाम सबसे पहले लिया जाता है (देखें उबेरॉय 1993: 46 और जैन 1994)।

इड़ावती कर्वे ने अपनी समाजशास्त्रीय कृतियों में भारतशास्त्र के साहित्य का उपयोग किया है। इड़ावती कर्वे मुंबई में जी.एस. घुर्गे की शिष्या थीं।

1930 के दशक में अंतिम वर्षों में पुणे में समाजशास्त्र एवं नृशास्त्र दोनों को मिलाकर संयुक्त विभाग का आरम्भ हुआ। इड़ावती कर्वे इस विभाग की अध्यक्ष बनीं। उन्होंने भारत के विभिन्न भागों में विस्तार से क्षेत्रीय कार्य (fieldwork) किया। संस्कृत के ज्ञान ने उन्हें प्राचीन शास्त्रों जैसे धर्मग्रंथ, न्याय पुस्तकें और महाकाव्यों के अध्ययन में काफी मदद की। उन्होंने इस जानकारी का उपयोग भारत में नातेदारी व्यवस्था को समझने के लिये किया। उनकी पुस्तक, *किनशिप आर्गनाइजेशन इन इंडिया (1952)*, भारत की नातेदारी व्यवस्था पर श्रेष्ठतम पुस्तकों में से एक है (श्रीनिवास एवं पाणिनी 1986: 30)।

आज भी प्राचीन भारतीय ग्रंथ भारत के धर्म और समाज के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करते हैं। वर्तमान समय में भी बहुत से समाजशास्त्री साहित्य और कला के द्वारा भारतीय समाज को समझने का प्रयास कर रहे हैं।

### बोध प्रश्न 3

i) उन तीन ब्रिटिश प्रेसिडेंसियों के नाम बताइए जहां उन्नीसवीं शताब्दी में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई थी। दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....  
.....

ii) कलकत्ता विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का आरंभ किसने किया? समाजशास्त्र में उनके योगदान को दस पंक्तियों में लिखिए।

.....  
.....  
.....  
.....  
.....  
.....  
.....  
.....  
.....  
.....  
.....

iii) भारतशास्त्र (Indology) क्या है? कुछ भारतविदों के नाम बताइए। पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....  
.....  
.....  
.....  
.....

---

### 4.7 सारांश

इस इकाई में आपने भारत की समाजशास्त्रीय विचारधारा की पृष्ठभूमि के विषय में पढ़ा। इस इकाई में सुधार के लिए सामाजिक धार्मिक आंदोलन तथा स्वाधीनता के लिए राजनैतिक आंदोलन की विवेचना की गई है। धार्मिक और राजनैतिक आंदोलन एक दूसरे के संपूरक थे। स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व मुख्य रूप से मध्यमवर्ग ने किया। ये मध्यम वर्ग भारत में अंग्रेजी राज के प्रभाव के कारण उभरे।

हमने भारत की समाजशास्त्रीय विचारधारा की बौद्धिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया है। और अंततः हमने भारत में समाजशास्त्र और नृशास्त्र के उदय और विकास की रूपरेखा दी है।

---

### 4.8 शब्दावली

**अद्वैत** शंकराचार्य का वह वेदांतिक दर्शन जो एक ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास करता है।

<b>मंच (forum)</b>	एक ऐसी सभा या कार्यक्रम जो कि सामाजिक-राजनैतिक या आर्थिक जैसे सार्वजनिक विषयों पर विचार-विमर्श करे।
<b>मानववादी (humanistic)</b>	वह विचारधारा या कार्यप्रणाली जो मनुष्य की प्रकृति, गरिमा और उसके आदर्शों पर आधारित हो
<b>आदर्शवादी (idealist)</b>	वह व्यक्ति जिसकी विचारधारा या व्यवहार, दृष्टा या अव्यवहारिक लक्ष्यों के आदर्शों पर आधारित हो अथवा कला, दर्शन या साहित्य में आदर्शवाद पर आधारित हो।
<b>मूर्तिपूजा</b>	मूर्ति अथवा ईश्वर की प्रतिमा की पूजा
<b>मध्यम वर्ग</b>	इस इकाई में इसका अर्थ आर्थिक रूप से मध्यम वर्ग लोगों से नहीं है बल्कि उस वर्ग से है जो (अंग्रेजी राज में) पढ़े-लिखे सुशिक्षित वर्ग के थे।
<b>मिशनरी</b>	वे ईसाई धर्म प्रचारक जो भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने, उसकी शिक्षा देने और भारतवासियों को उसमें दीक्षित करने के उद्देश्य से आए थे।
<b>बहुविध नृजातीय (multi-ethnic)</b>	एक ऐसा समाज जिसमें संस्कृतियों, धर्मों, भाषाओं की विविधता हो, जैसे भारत
<b>प्राच्यविद (orientalist)</b>	वे विद्वान जो पूर्वी (प्राच्य) संस्कृतियों जैसे चीन, भारत, पाकिस्तान आदि का अध्ययन करते हैं
<b>अत्याचार (persecution)</b>	धर्म, जाति, वर्ग के आधार पर भेदभाव रखना या अत्याचार करना
<b>तर्कसंगत (rationality)</b>	यह एक ऐसी वैचारिक व्यवस्था है जो तर्क को ज्ञान का एकमात्र आधार मानती है।
<b>वेदांत</b>	यह हिन्दू धर्म की वेदों पर आधारित अद्वैतवादी (एक ईश्वर में विश्वास) प्रणाली है जिसके अनुसार आत्मा व परमात्मा एक ही है।

#### 4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ऊमन टी.के. एंड मुखर्जी, पी.एन. (संपादित) 1986. इंडियन सोशियोलॉजी पापुलर प्रकाशन: मुंबई

बेकर, हावर्ड, एंड बार्न्स, एच.ई. 1961. सोशल थॉट्स फ्रॉम लोर टू साइंस. तीसरा संस्करण: वाल्यूम 3. डोवर पब्लिकेशन: न्यूयार्क (पृष्ठ 1135-1148)

#### 4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

##### बोध प्रश्न 1

- i) भारतीय दर्शन की छः मुख्य धाराएं हैं  
योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, वेदांत और मीमांसा।